ओ३म्

उपनिषदों की भूमिका

कृति

पं० राजा राम,

संस्कृत प्रोफैसर डी. ए. वी. कालिज. लाहौर।

इसमें

उपनिषदों के अनुसार

प्रकृति, परमात्मा, जीवात्मा,
तीनों का परस्पर सम्बन्ध, पुनर्जन्म, मरने
के पीछे की अवस्थाएं, कर्म, उपासना,
ज्ञान, बन्ध, मोक्ष, इन विषयों का
पूरा वर्णन है

और

श्री शंकराचार्यादि आचार्यों के माने हुए-अद्वैत,
विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, और द्वैताद्वैत
सिद्धान्तों का भी वर्णन पूरा है।

(विषय—११७—विषय सूची उधर देखो)।

बाम्बे प्रेस लाहौर में छपी।

प्रथम बार १०००] [मूल्यम ।)॥

॥ विषय सूची ॥

उपनिषदों की भूमिका ॥

पूर्वपीठिका—उपनिषद् सम्बन्धी बाहरी विचार।

(१) उपनिषद् किस को कहते हैं।

उपनिषद् से तात्पर्य अध्यात्मविद्या वा अध्यात्मविद्या के ग्रन्थों से है। उपनिषद् शब्द रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है, अक्षरार्थ, उप+निषद्=पास+बैठना, अर्थात् वह विद्या जो गुरु के पास बैठकर सीखी जाती है। उपनि पूर्वक सद्ॡ धातु पास बैठने के अर्थ में प्रयुक्त भी हुआ है। "विश्वामित्रं ह्येतदहः शंसिष्यन्तमिन्द्र उपनिषससाद" (ऐत० आ० २।२।३।१) यहां उपनिषससाद का अर्थ है "पास बैठा"। इसलिये स्वरसतः प्राप्त इस प्रयुक्त और संगत अर्थ को त्याग कर अप्रयुक्त अर्थ में धावन करना अनावश्यक है।

(२) उपनिषदों के लिये गुरु की आवश्यकता।

उपनिषदों में अध्यात्मविद्या के वह रहस्य भरे हुए हैं, जो बिना पूरे आचार्य के खुल नहीं सक्ते। अतएव कहा है:—

आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति।
(छा० ४।९।३)

अर्थ—आचार्य से ही जानी हुई विद्या असली भलाई तक पहुंचाती है। तथा:—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।(श्वेता० ६।२३)

अर्थ—जिसकी परमात्मामें परमभक्ति है, और जैसी परमात्मा में

है, वैसी गुरु में है, उस महात्मा को यह कहे हुए विषय प्रकाशित होते हैं॥ मुण्डक में तो यह स्पष्ट आज्ञा ही है, कि:—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। (मुण्ड० १।२।१२)

अर्थ—उसके जानने के लिये वह समिधा हाथ में लेकर उस गुरु की ही ओर जाए, जो श्रोत्रिय (वेद का जानने वाला) और ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्म में निष्ठा वाला) है।

अतएव उपनिषदों में स्थान २ पर गुरु से विद्या पढ़ने का ही उपदेश पाया जाता है।

(३) उपनिषदों की संख्या। उपनिषदों की संख्या तो बहुत है, पर उन में से प्रधान उपनिषदें यही दस मानी गई हैं:—

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा*।

इनके सिवाय जो उपनिषदें हैं, उनमेंसे बहुत सी तो सम्प्रदायी लोगों की अपने २ मन्तव्य के पक्ष में रची हुई हैं, पर कईएक केवल अध्यात्मविद्या की ही प्रतिपादक भी हैं, तथापि इन दस में अध्यात्मविद्या की कोई त्रुटि शेष नहीं रही है।

(४) उपनिषदों का मान। भारतवर्ष की ब्रह्मविद्या, जिस का सिक्का अब सारी दुनिया मान रही है, उसके भण्डार यह ग्रन्थ हैं। जिन्हों ने इन ग्रन्थों का अभ्यास किया है, और अन्य मतों की उन पुस्तकों का भी अभ्यास किया है, जो इस विषय पर लिखी गई हैं, वह बड़े ऊंचे और महत

---

* इन दस को और इनके साथ ग्यारहवीं श्वेताश्वर को सरल हिन्दी अनुवाद समेत हमने छपवा दिया है।

स्वर से पुकार उठे हैं, कि दुनिया में यह अकेली पुस्तकें हैं, जो मनुष्य की सच्ची शान्ति का हेतु हैं। इनके बराबर न दुनिया में मस्ती देनेवाली और न परलोक की शान्ति देने वाली कोई और पुस्तक है। ब्रह्म का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप, परलोक का तत्त्व, उपासना की रीति, उपासना के द्वारा लौकिक और पारलौकिक फलों की प्राप्ति, सृष्टि का तत्त्व, आत्मा और परमात्मा के साक्षात् दर्शन का उपाय, और परमानन्द की प्राप्ति, यह सब विचार इन प्राचीन ग्रन्थों में पाए जाते हैं, और इनका शान्तिदायक उत्तर पाया जाता है। और ऐसा कौन है, जो आज कल भी प्राचीन काल के इन शुद्ध प्रश्नों और पवित्र विचारों को पढ़कर अपने हृदय में नए भावों का उदय न अनुभव करता हो। और अपनी आंखों के सामने नया प्रकाश न पाता हो।

(५) मुसल्मानों से मान।

उपनिषदों की चर्चा सुनकर मुसल्मानोंको भी अपने समयमें इस ओर रुचि हुई और अकबर के समय में इनकी बहुत चर्चा हुई, तदनन्तर दाराशिकोह अकबर के पोते ने बड़े परिश्रम और व्यय के साथ उपनिषदों का फ़ारसी अनुवाद करवाया। यह उसका एक बड़ाभारी उपकार और उदारता का काम था। इस से लोगों को बहुत बड़ा लाभ पहुंचा। उपनिषदों को पढ़कर स्वयं दाराशिकोह के चित्त में पुराने आर्यों का इतना बड़ा मान बढ़ गया, कि उसने उपनिषदों की भूमिका में तत्कालीन हिन्दुओं की गिरी हुई अवस्था पर बड़ा शोक प्रकट किया, वह लिखता है "ताइफ़ःए क़दीमए हिन्दरा बरवहदत इन्कारे व बर मुवहदां गुफ्तारे नेस्त, बॅल्कि पायाए एतबारेऽस्त, बरख़िलाफ़ जुहलाए ईवक्त, कि खुद इलॅमहारा करार दादः, व दर

पै आज़ार व तकफ़ीर बर मुवहदां उफ़्तादः अन्द, "व जमीए मुख-नाने तौहीद रा रद मे नुमायन्द"=अर्थ-हिन्दुओं के पूर्वजों को न एकता से इन्कार है, और न एकता मानने वालों पर कोई वक्तव्य है। बल्कि यह बात पूरेतौरपर विश्वास कीजाती है, विरुद्ध इसके, कि आज कल के मूर्ख लोग, जिन्होंने स्वयं नए उपदेश घड़ लिये हैं, और एकता मानने वालों को सताने और कष्ट देने की चिन्ता में पड़े हैं, और एकता के सारे वाक्यों का खण्डन करते हैं॥ दाराशिकोह के यह बचन उस समय हिन्दु और मुसल्मान दोनों के ध्यान के योग्य थे। हिन्दुओं के इसलिये, कि वह एक परब्रह्म की उपासना और उसके साक्षात् दर्शन की जगह भिन्न २ देवी देवताओं की मूर्तिपूजा को दे चुके थे। और मुसल्मानों के इसलिये, कि वह हिन्दुओं की वर्तमान अनेक देवी देवताओं की पूजा को देखकर उनके धर्म को ही मूर्तिपूजा का धर्म वा एकता (वहदानीयत) के विरुद्ध धर्म समझते थे। अस्तु, दाराशिकोह के अनुवाद से और आर्य लोगों के संन्यासियों की कृपा से उपनिषदों के शुद्ध विचार एकबार फिर ज़ोर के साथ फैलने लगे। प्रायः साधारण मुसलमानों का भी, पर विशेषतः मुसलमान फ़कीरों का ध्यान उपनिषदों की ओर अधिक खिच गया। उपनिषदों ने उनके हृदयों को स्वाधीन कर लिया, उन पर अपना रंग चढ़ा दिया। यह रंग उनके मस्त श्लोकों (नज़्मों) में अब भी वैसी ही झलक मारता है, जो साफ उपनिषदों के रंग की झलक है। पर हमें शोकसे कहना पड़ता है, कि हिन्दुओंने मुसल्मानों के इस झुकाव से भी उलटी हानि उठाई। क्योंकि जोहिन्दु उन मुसलमान फ़कीरोंके सत्संगी बनें, उनमें से जिन्होंने खानपान के बन्धन को तोड़ा, वह दूसरे हिन्दुओं से छेक दिये गए। उपनिषदों ने तो मुसलमानों को हिन्दुओं की ओर झुकाया था। पर हिन्दुओं ने मुसलमानों को अपने में नहीं लिया, प्रत्युत

अपने ही भाइयों को उनमें मिला दिया। दूसरी बात हमें शोक से यह कहनी पड़ती है, कि उपनिषदों का ज्ञान जो एक बार फिर फैलने लगा था, वह आरम्भ में ही विरुद्ध कारणों के उपस्थित होजाने से फैलने न पाया। निदान मुसलमानों की योग्यता के समय में उपनिषदें उनसे एक बार अपनी योग्य प्रतिष्ठा पा चुकी हैं।

(६) योरूप वासियों से मान।

जर्मन का प्रसिद्ध तार्किक (फिलासफर) शोपनहार लिखता है "हर एक पद्य से गहरे, नए, और ऊंचे विचार उत्पन्न होते हैं, भारतवर्ष का पुराना वायुमण्डल हमें घेरे हुए है, और नई रोशनी के नए विचार भी हमारे चारों ओर हैं, पर सारे संसार में मूलतत्त्वों को छोड़कर किसी दूसरी विद्या का अभ्यास ऐसा उपयोगी और हृदय को ऊंचा बनाने वाला नहीं है, जैसाकि उपनिषदों का। इसने मेरे जीवन में मुझे शान्ति दी है, और यह मरनेके समय भी शान्ति देगा"।

यह मान, जो शोपनहार ने उपनिषदों को दिया है, इस से बढ़कर मान किसी ग्रन्थ का होही नहीं सक्ता। योरुप में दिनों दिन उपनिषदों का आदर बढ़ रहा है, और इनके रहस्य समझने के लिये नित्य नए प्रयत्न होरहे हैं। और एक दिन आएगा, जब कि विद्यारसिक योरुप के विद्वान् इनके सच्चे आशय पर पहुंच जाएंगे।

(७) आर्य्यों से मान

यह प्रतिष्ठा तो उन लोगों ने की है, जिनको उपनिषदें एक अलभ्य वस्तु के तौर पर मिली हैं। पर आर्यलोग जिनकी यह जद्दी जायदाद हैं, उन्होंने तो इनकी और भी बढ़कर प्रतिष्ठा की है। दर्शनशास्त्र इन के अक्षर २ को प्रमाण मानते हैं, और एक पूरा दर्शन केवल उपनिषदों

के विचार के लिये ही रचागया है, जिसका नाम वेदान्तदर्शन, ब्रह्मसूत्र, शारीरकसूत्र, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तमीमांसा, अथवा उत्तरमीमांसा है। उपनिषदों की प्रतिष्ठा के हेतु से इस दर्शन ने भी इतनी प्रतिष्ठा पाई है,कि जितने भाष्य और टीके इस पर बने हैं,किसी और दर्शन पर नहीं बने। सीधा उपनिषदों पर भी बहुत से भाष्य और टीके बने हैं, और बन रहे हैं। उपनिषदों के पीछे की सारी संस्कृत पुस्तकों पर उपनिषदों का रंग चढ़ा हुआ साफ प्रतीत होता है। भगवद्गीता जो इस समय सारे धार्मिक जगत् में बड़े आदर की दृष्टि से देखी जारही है,सारी ही उपनिषदों के रंग से रंगी हुई है। निदान उपनिषदों ने अपनी प्रतिष्ठा सब से करवाई है, करवा रही हैं, और करवाती रहेंगी, क्योंकि यह इसके योग्य हैं। इन ग्रन्थों का हर एक उपदेश एक विशेष रस से भरा हुआ होता है। यह वह अमर ग्रन्थ हैं, जो बहुत पुराने समय से चले हुए हैं, और बराबर प्रतिष्ठा पाते चले आए हैं।

(८) उपनिषदों का अभ्यास

ब्रह्मविद्या के रसिकजनों ने सदा इन ग्रन्थों के सामने अपना सिर झुकाया है, उनके लिये इनका विचार नित्य नया है। इसमें संदेह नहीं, कि मूल ग्रन्थों का अभ्यास बहुत बड़ा रसदायक है। पर यह एक बड़े परिश्रम का काम भी है। मूल उपनिषदें संस्कृत भाषा में हैं,और संस्कृत भी नवीन नहीं, प्राचीन है, तिसपर भी उपनिषदों का समझना केवल शब्दार्थ जानने पर ही निर्भर नहीं रखता, उनके समझने के लिये वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों से पूरा परिचयहोना चाहिये।और फिर उसके साथ अपना अनुभव भी साथी हो। तब इनके रहस्य समझ में आसक्ते हैं। यह काम संस्कृत के अभ्यास में जीवन बिताने वालों का है। दूसरों के

लिये तो उनके शुद्ध अनुवाद* का अभ्यास वा अनुवाद की सहायता से मूल का अभ्यास ही उपयोगी होसक्ता है।

(९) अभ्यास की रीति।

उपनिषद् के अभ्यास के लिये चाहे थोड़ा समय प्रतिदिन दो, पर एकान्त में एकाग्र होकर इसका अभ्यास करो, और जिज्ञासु बनकर इसके उपदेश सुनो। जल्दी २ बहुत दूर तक पढ़ जाने का ख्याल मत करो, बल्कि इसको विचारते समय इसका रस पान करो, और जो तरंग तुम्हारे हृदय में उठते हैं, उनको उठने का अवसर दो, जो प्रेम तुम्हारे हृदय में बहने लगता है, उसकी धारा को मत रोको, जो आनन्द तुम्हारे देह को घेर कर ब्रह्माण्ड में फैलना चाहता है, उसको फैलने दो, जो रस तुम्हारे आत्मा को तृप्त करने लगा है, उसको तृप्त करने दो। बल्कि ऐसी अवस्था में तुम पाठ का ध्यान ही छोड़ दो, और जो कुछ तुम अपने आपको अनुभव करने लगे हो, उसमें मग्न हो जाओ। इस प्रकार के अभ्यास से तुम केवल इन वचनों के वक्ता ही नहीं बनोगे, किन्तु उस रस के अनुभविता भी बन जाओगे, जो रस ऋषियों ने इनमें बहाया है।

---

* अनुवाद करने वाले का काम यह है कि पहले मूल को पूरी तरह समझे, और फिर सचाई (ईमानदारी) से अनुवाद करे। यही शुद्ध अनुवाद होसक्ता है। पर उन लोगों की दशा शोचनीय है। जो बिना समझे अनुवाद करते हैं, और अपना अर्थ साधने के लिये जान बूझकर सचाई से परे हट जाते हैं। उनको यह साहस इसलिये होता है, कि वह अपने श्रद्धालुओं को ऐसा धोखा देसक्ते हैं। सो तुम ध्यान रक्खो, कि यदि मूल से किसी ग्रन्थ को नहीं समझ सक्ते हो, तो वही अनुवाद हाथ में लो, जो परिश्रम से और धर्मभाव से छपा है।

(१०) अभ्यास का फल।

ब्रह्मविद्या के अभ्यास का फल उस उच्च जीवन की प्राप्ति है, जहां मान अपमान, स्तुति निन्दा, सुख दुःख, हर्ष शोक सब तुल्य बन जाते हैं । हृदय इतना गम्भीर होजाता है, कि यह उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सक्ते। हृदय एकरस शान्त रहता है, इस शान्त हृदय में आत्मा और परमात्मा के दर्शन मिलते हैं । यही मानुषजीवन का परम उद्देश्य है, इसको पूर्ण करके मनुष्य कृतकृत्य होजाता है । विश्वास रक्खो, यह अनमोल जन्म परमात्मा के दर्शन से ही सफल होता है, जैसाकि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः, अथ य एतदक्षरं गार्गि ! विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः (बृह० ३।८।१०)

अर्थ—जो इस अविनाशि को जानें बिना हे गार्गि ! इस लोक से चल बसता है, वह कृपण है (कृपा का पात्र है, उस पर तरस आता है) हां जो इस अविनाशि को जानकर हे गार्गि ! इस लोक से चलता है वह ब्राह्मण है ।

उत्तरपीठिका—उपनिषदों के प्रतिपाद्य विषय ।

११ प्रकृति, पुरुष और परमात्मा का विवेक — उपनिषदों का मुख्य विषय परमात्मा के साक्षात् दर्शन हैं, जो प्रकृति, पुरुष और परमात्मा के विवेक अर्थात् निखेरने से लब्ध होते हैं । प्रकृति, पुरुष और परमात्मा यही तीन मूलतत्त्व हैं, और जो नाम सत् (हस्ती) है, सब इन्हीं तीनों के सम्बन्ध का प्रकाश है । प्रत्येक जीवित देह में यह तीनों विद्यमान हैं । हैं सही, पर ऐसे मिले हुए, कि अर्वाग्दृष्टि से निखेरे नहीं जासक्ते । दूध और पानी ऐसे मिलते हैं, कि निखेरना कठिन होता है । हां जब हंस उस में चोंच डालता है, तो दूध और पानी साफ निखर जाते हैं । यह दूध और पानी स्थूलवस्तु हैं, उनको हंस निखेरसक्ता है । पर प्रकृति, पुरुष और परमात्मा जो कि परमसूक्ष्म हैं, उन को वही निखेर सक्ता है, जो परमहंस है । पर याद रक्खो, परमहंस बनना भी उपनिषद् से ही सीख सक्तेहो, क्योंकि यह कोई बाहर का वेष नहीं, आत्मा की अवस्था विशेष है ।

अस्तु, प्रकृत यहां यही है, कि इन तीनों मूलतत्त्वों को निखेर कर दिखलाना उपनिषद् का मुख्यतात्पर्य है । इस के समझने के लिये दृष्टान्त के तौर पर किसी जीवितदेह को लो । यहां दो बातें स्पष्ट दीखती हैं, एक तो स्थूल देह है, जिस को हम आंखों से देखते हैं, हाथों से छूते हैं । और दूसरी उसके अन्दर एक चेतनता है जिस को न हम देख सक्ते हैं, न छूसक्ते हैं, पर उस से इनकार भी नहीं करसक्ते हैं । क्योंकि हम जो कुछ जानते हैं, सब उसी से जानते हैं । हमारे देह में सारा उजाला उसी चेतनता का है ।

जिस तरह लैम्प के अन्दर एक बत्ती जलरही है, तो लैम्प प्रकाशमान है । बत्ती बुझजाती है, तो सारे अन्धेरा हो जाता है । इसी प्रकार इस शरीर के अन्दर भी एक जोत जल रही है, तो

शरीर में सारे चांदना हो रहा है। अर्थात् हम आंखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, किसी अंग को छूओ, झट मालूम करलेते हैं। कहीं भी अन्धेरा नहीं, सारे ही चांदना है। पर जब अन्दर की जोत बुझ जाती है, तो फिर कहीं भी चांदना नहीं रहता, सारे अन्धेरा हो जाता है। अब आंखें वही हैं, पर देखती नहीं, कान वही हैं, पर सुनते नहीं, शरीर भी वही है, पर छूकर देखो, उसे कुछ पता ही नहीं। ऐसा क्यों होगया ? इसलिये कि अब उस में वह जोत है नहीं, जो इस को प्रकाशयुक्त बनाए हुई थी। यही जोत जीवात्मा है। जीवात्मा चेतन है। शरीर जड़ है, प्रकृति से बना है। इस जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा के मेलका ही यह सारा खेल है। अब इस मेल का मिलाने वाला, इन दोनों से अलग दोनों से अधिक शक्ति, दोनों के अन्दरस्थित अन्तरात्मा परमात्मा है। यह जीवन हमारा है, पर हम जानते नहीं, कि किस तरह बना है, और किस तरह पल रहा है। जब भूख और प्यास लगती है, हम खा पी लेते हैं, बस इतना हम जानते है, आगे सब कुछ वही जानता है। हम इस जीवन से पहले कई जीवन भोग आए हैं, और आगे भोगेंगे। पर हम से वह ओझल हैं, हम उनको नहीं जानते, केवल इसी को जानते हैं, इसलिये इसी से प्रेम है, अतएव हम इसको छोड़ना नहीं चाहते। पर यह हमारे अधीन की बात नहीं, हम एक महाशक्ति की व्यवस्था में बर्त रहे हैं, वह जहां चाहती है, लेजाती है। वस्तुतः हमारी भलाई में वही शक्ति सदा लगी रहती है। हम अपना वर्तमान जानते हैं, वह हमारा भूत भविष्यत् जानती है, और हमें हमारे सुधार के रस्ते पर लाती रहती है, जब तक कि हमारा मोक्ष नहीं होलेता। यही महाशक्ति परमात्मा है, जो हमारे रोम २ में बस रहा है, और हमारे आत्मा का भी आत्मा होकर हमारे आत्मा में स्थित है।

और यह जिस प्रकार हमारे शरीर के रोम २ में स्थित है, इसी प्रकार यह सारी सृष्टि के रोम २ में स्थित है, और सारी सृष्टि को पूर्ण करके उस से परे तक फैल रही है।

प्रकृति का सविस्तर वर्णन।

(१२) प्रकृति का स्वरूप। प्रकृति वह मूलतत्त्व है, जिससे यह जगत बना है। माया भी उसी को कहते हैं।

चेतन के सिवाय और सारा माया का ही पसारा है। इस लिये उसके कार्य की कोई थाह नहीं है। पर हम संक्षेपतः उसके कार्य को तीन भागों में बांट सक्ते हैं-देह, इन्द्रिय और विषय।

(१३) प्रकृतिका कार्य।

(१४) देहका स्वरूप। जीवात्मा के लिये भोग भोगने का जो घर है, अर्थात् जिस में बैठकर जीवात्मा भोग भोगता है, वह देह है।

देह कितने प्रकार के हैं, यह संख्या, न अब तक हुई है, न होना सम्भव है। जीवात्मा जिस २ योनि में रहता है, वह सब देह हैं। इन योनियों से जल, स्थल और अन्तरिक्ष सभी भरपूर हो रहे हैं। जहां जैसी योनियों का होना सम्भव है, वहां वैसी योनियां पाई जाती हैं। तथापि योनियों के मुख्य भेद चार किये गए हैं (१) उद्भिज्ज, उगने वाले, जैसे सब प्रकार के तृण, वेल, झाड़ी, ओषधि, बनस्पति आदि (२) स्वेदज, पसीने से उत्पन्न होने वाले जैसे जूं लीख आदि (३) अण्डज, अण्डे से उत्पन्न वाले, जैसे पक्षी सर्प आदि (४) जरायुज, जेर से उत्पन्न होने वाले, जैसे मनुष्य पशु आदि।

(१५) देहभेदवा योनि भेद।

(१६) इन्द्रियों का स्वरूप। इस देह में जीवात्मा के पास काम करने और जानने के लिये जो साधन हैं, वह **इन्द्रिय** कहलाते हैं।

(१७) इन्द्रियों के दो भेद। इन्द्रिय दो प्रकार के हैं, **कर्मेन्द्रिय** और **ज्ञानेन्द्रिय**।

(१८) कर्मेन्द्रिय। **कर्मेन्द्रिय** वह हैं, जिन से जीवात्मा काम करता है। वह यह पांच हैं—**वाक्** (वाणी) **हस्त** (हाथ) **पाद** (पाओं) **पायु** (गुदा) **उपस्थ** (स्त्री वा पुरुष का चिन्ह)। इनके काम यह हैं—वाणी का काम बोलना है, हाथ का पकड़ना, पाओं का चलना, गुदा का मलत्याग, और उपस्थ का मूल त्याग तथा सन्तानोत्पादन।

(१९) ज्ञानेन्द्रिय। **ज्ञानेन्द्रिय** वह हैं, जिन से आत्मा जानता है, वह दो प्रकार के हैं, **बाह्येन्द्रिय** (बाहर के इन्द्रिय) और **अन्तरिन्द्रिय** (भीतर की इन्द्रिय)।

(२०) बाहर के इन्द्रिय। **बाह्य इन्द्रिय** पांच हैं—**चक्षु** (नेत्र) **श्रोत्र** (कान) **घ्राण** (नाक) **रसना** (जिह्वा) और **त्वचा** (चमड़ा) इन से रूप, शब्द, गन्ध, और स्पर्श का ज्ञान होता है अर्थात् इन से जीवात्मा देखता, सुनता, सूंघता, चखता और छूता है।

(२१) मन वा अन्तःकरण। **अन्तरिन्द्रिय मन** है। मन से सुख दुःख का ज्ञान होता है, दूसरे ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय सब मन के अधीन काम करते हैं। मन को ही अन्तःकरण कहते हैं। अन्तःकरण वृत्तिभेद (अपने काम के भेद) से

चार प्रकार का कहलाता है, मन, बुद्धि; चित्त, अहङ्कार, संकल्प विकल्प करने से मन, निश्चय करने से बुद्धि, स्मरण करने चित्त, और अहंभाव (मैं हूं, अपनत्व) के प्रकट करने से अहङ्कार कहलाता है। जैसे दूर से किसी पदार्थ को देखकर मनुष्य सोचता है, कि यह क्या है, फिर निश्चय करता है, यह सेब है। फिर स्मरण करता है, यह स्वादु है और भूख का दूर करने वाला है, तब वह इस नतीजे पर पहुंचता है, कि मैं इसको खाउं, अथवा यह मेरे लिये है, तब वह उसको खालेता है। अब यह चार काम हुए हैं, सोचना, निश्चय करना, स्मरण करना और अपने साथ सम्बन्ध जोड़ना। यह काम चारों एक मन के ही हैं। पर इन चारों के भेद से वह मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार इन चार भिन्न २ नामों से कहा जाता है।

(२२) विषय का वर्णन।

जीवात्मा जिन पदार्थों को भोगता है, वह विषय हैं। प्रकृति से जो कुछ बना है, वह या तो देह और इन्द्रिय हैं, या इनके सिवाय जो कुछ है, वह सब विषय है। क्योंकि इस जगत में जो कुछ रचना हुई है, वह सब किसी न किसी जीव के उपभोग में आती है। परमात्मा ने यह सारा जगत रचा ही अपनी प्रजा के उपभोग के लिये है। इसलिये हर एक वस्तु किसी न किसी के उपभोग का साधन बनती है, जो जिस के उपभोग का साधन बनती है, वह उसके लिये विषय है। यह सब (देह, इन्द्रिय और विषय) प्रकृति का कार्य है।

(२३) माया ब्रह्म की शक्ति-विशेष है।

माया स्वतन्त्रशक्ति नहीं, किन्तु ब्रह्म की एक शक्तिविशेष है। जो ब्रह्म के अधीन कार्य करती है। अर्थात् ब्रह्म इस में आत्मा है, और यह उसके शरीर के तौर पर है। जिस तरह मकड़ी अपने शरीर से तन्तु

निकाल कर तनती है, इसी तरह ब्रह्म माया से इस जगत् को निकाल कर तनता है।

(२४) माया का परिणाम।

जिस तरह मनुष्य का बीज गर्भाशय में जाकर प्रतिदिन और प्रतिक्षण अपने रूप को बदलता हुआ कई आकारों में से होकर मनुष्य के आकार में आता है,इसी प्रकार माया भी ब्रह्म की प्रेरना से प्रतिदिन और प्रतिक्षण अपने आकारोंकोबदली हुई कई आकारोंमें सेहोकरपहले पृथिव्यादि लोकोंके रूपमें आई,और उससे फिर आगे क्रमशःपरिणत होती हुई घास, बल्ली, ओषधि, वनस्पति, कीट पतंग, पशु पक्षी और मनुष्य के आकार में परिणत हुई है। इसी क्रमशः परिवर्तन (तबंदीली) को परिणाम कहते हैं। यह सारा जगत् प्रकृति के परिणाम का फल है। ब्रह्म जो माया का अन्तरात्मा है, यह उसकी इच्छा से परिणत होने लगती है, और जैसे २ उसकी इच्छा है, उसी तरह यह परिणत होती चली जाती है। परमात्मा की इच्छा अपनी प्रजा के. लिये शुभ है, इसीलिये प्रकृति जीवों की भलाई में लगी रहती है। जब तक किसी जीव का परम कल्याण (मोक्ष) नहीं होता, तब तक यह उसके सुधार में लगी रहती है। निदान इस मायाके अन्दर चितिशक्ति सदा एकरस रहतीहै,और यह माया उसके ऊपर उसकी इच्छा से बदलती रहती है।

(२५) परिणाम वाद में कार्यकारण का अभेद।

जो कुछ इस जगत् में अत्यन्त असत् है, वह कभी हो नहीं सक्ता, और जो सत् है, उसका कभी स्वरूपनाश नहीं होता। उत्पत्ति और विनाश रचना के केवल बदल जाने का ही नाम है। जैसे पहले. एक मट्टी का गोला होता है, वह मट्टी की एक प्रकार की रचना है। जब कुम्हार उस से घड़ा

बनाता है, तो वह उसी मट्टी को एक दूसरी रचना में बदल देता है, अब वह मट्टी गोला नहीं रही, किन्तु घड़ा बन गई है। यही गोले का नाश और घड़े की उत्पत्ति है। वस्तुतः न कुछ आया है, न गया है, वही मट्टी जो पहले एक आकार में थी, अब दूसरे आकार में है। मट्टी ज्यों की त्यो हैं, केवल आकार बदल गया है। यह ऐसे ही है, जैसे एक चादर को लपेट कर गोला बना दें, तो वह उसका एक आकार है चौरस विछा दें, तो वह दूसरा आकार है, पर चादर वही एक है। इसी प्रकार उसी मट्टी को गोल लपेट कर गोला बना लो, थाल की तरह फैलाकर थाल बना लो वा घड़े की तरह पेट ग्रीवा और मुख वाला बनाकर घड़ा बना लो। निःसन्देह गोले से घड़े का आकार भिन्न है, पर मट्टी जो गोले की थी, वही घड़े की है। यही कार्य कारण का अभेद है अर्थात् मट्टी के सारे कार्य मट्टी ही हैं। अब यदि मट्टी की परीक्षा करें, तो यह भी मूलतत्त्व नहीं, यह भी घड़े की तरह बनी हुई है। सो जैसे घड़ा मट्टी से अभिन्न है, इसी प्रकार मट्टी उस तत्त्व से अभिन्न है, जिस से वह बनी है। इस प्रकार आगे २ स्थूल से सूक्ष्मसूक्ष्म की खोजना करते हुए जो अन्त में जाकर परमसूक्ष्म मूलतत्त्व है, वह माया है, वह प्रकृति है, यह सारा दृश्य उस का परिणाममात्र (तबदीली मात्र) है, और उस से अभिन्न है।

(२६) माया अनादि और अनन्त है।

ऊपर कह आए हैं, कि रचना बदलती है, पर द्रव्य सर्वत्र वही रहता है। उस विशेषरचना से पूर्व भी वह द्रव्य विद्यमान है, उस विशेषरचना के समय में भी द्रव्य वही है, क्योंकि यह उसी द्रव्य की ही तो रचना है, और फिर उस विशेषरचना के नाश में भी वह द्रव्य ज्यों का त्यों बना रहेगा। न वह कभी उत्पन्न हुआ न वह

कभी नाश होगा। न उसका आदि है, न अन्त होगा। यही उस द्रव्यकी अनादिता अनन्तता है। ऊपर सिद्ध किया गया है; कि इन सारे द्रव्यों का मूलद्रव्य माया है, शेष सारे द्रव्य उससे बने हैं, अतएव मूलतत्व नहीं हैं। बस वह मूलद्रव्य माया अनादि और अनन्त है, और उससे बना हुआ विश्व सादि और सान्त है।

(२७) प्रवाह से अनादि।

यह विश्व जिसको ऊपर सादि और सान्त कहा है, यह भी प्रवाह से अनादि और अनन्त है। प्रवाह से अनादि और अनन्त का यह तात्पर्य्य है, कि जिस तरह यह विश्व अब बना हुआ है, इसी तरह से पहले भी बनता चला आया है। कब से ऐसा बनना आरम्भ हुआ है, इसका कोई आदि नहीं। और आगे भी इसी तरह बनता चला जाएगा। कब तक बनता चला जाएगा, इसका कोई अन्त नहीं। क्योंकि जिन कारणों से यह अब बना है, वह सदा से हैं, और सदा रहेंगे। अतएव कहा है 'धाता यथा पूर्वमकल्पयत्'=परमात्मा ने पहले की नाई बनाया (ऋग् १०।३)। इसी प्रकार जीव के कर्म भी प्रवाह से अनादि हैं।

परमात्मा का वर्णन।

(२८) उपनिषदों में परमात्मा के वर्णन का प्रकार।

उपनिषदों में परमात्मा का वर्णन दो प्रकार से किया है, एक उसके केवल स्वरूप मात्र का, दूसरा जगत् में उसके प्रकाश (ज़हूर) का। उसका स्वरूप इस जगत् से अत्यन्त विलक्षण है, पर प्रकाश सारे ही जगत् के अन्दर है। क्योंकि इस जगत् की स्थिति प्रवृत्ति सारी उसके अधीन है।

इस जगत् के अन्दर, इस जगत् से विलक्षण जो उसका अपना